7

दृश्य एवं प्रदर्शन कला द्वारा शिक्षण

शर्बरी बैनर्जी *

हमारा भारतीय समाज विभिन्न संस्कृतियों से ओतप्रोत है इसमें प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही अपने परिवार, समाज तथा स्कूल के वातावरण में संस्कृति एवं कला के विभिन्न पहलुओं को देखता और समझता है। ये सभी उसे सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। बचपन से ही बच्चे को आकृष्ट करने वाली विभिन्न कलाओं को यदि कक्षा में भी स्थान मिले तो सीखना बच्चे के लिए सरल और आनंदमय बन सकता है। कैसे? जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

भारतीय समाज सांस्कृतिक कार्यकलापों से ओतप्रोत है। इस देश का हर व्यक्ति जन्म से अपने आसपास विविध संस्कृति के पहलुओं को देख जीवन की राह में अग्रसर होता है। भारत की संस्कृति दृश्य एवं प्रदर्शन कलाओं से भरपूर है। बच्चे के जन्म से मृत्यु तक हर पहलू में ऋतुओं के आगमन के उत्सव, देवी-देवताओं के पूजन, फसल बोने एवं कटने के उत्सव, साज-सज्जा कपड़ों का बुनना, खिलौनों की बनावट, बर्तनों की बनावट और भी कई क्रियाकलापों में 'कला का समावेश' है। संगीत, नृत्य, कविताएँ, शिल्प परंपराएँ, रंगमंच यह सब कुछ हमें अपनी संस्कृति से विरासत में मिली है। विश्व में बहुत कम ऐसे देश हैं जहाँ हमारी तरह की रम्य संस्कृति पाई जाती है। प्रत्येक प्रदेश की लोकशैली है, लोककलाएँ हैं, लोकगीत हैं और लोककथाएँ हैं। परंतु अहम् प्रश्न यह है कि क्या हम इस विरासत का लाभ उठा रहे हैं? इतनी विविध एवं समृद्ध संस्कृति को क्या हम सही व्यवहार में ला रहे हैं?

भारत सरकार इस मुद्दे पर स्वाधीनता के उपरांत से ही इस दिशा में कई उपक्रम किए है। हमारी राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा -2005 कहती है कि "अगर अपनी अनूठी सांस्कृतिक पहचान को उसकी विविधता और समृद्धता सहित बचाए रखना है तो औपचारिक शिक्षा में कला शिक्षा को तत्काल समेकित करना होगा।..... बच्चे भाषा, प्रकृति के रूपों की खोज, स्वयं की और अन्य की समझ आदि को कला के माध्यम से आसानी से विकसित कर सकते हैं।"

इस सबके बावजूद हम विद्यालयों में, शिक्षा के क्षेत्रों में, अध्यापक/अध्यापिकाओं के अध्यापन में इसका अभाव पाते हैं। जिस संस्कृति से

* *प्रवक्ता*, कला एवं सौन्दर्य शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली- 110016

हम सराबोर हैं उसका सद्व्यवहार शिक्षा में भली तरह नहीं करते। क्या कारण है हमारे इस आचरण का? क्यों नहीं अपनाते कला का माध्यम जिससे शिक्षा आनंदमय हो जाए, सजीव बन जाए? हमारे पास कलाओं का खज़ाना है जो एक परिपक्व माध्यम है सिर्फ़ सौंदर्य और आनंद के लिए ही नहीं, संसार के सभी क्षेत्रों के ज्ञान के लिए भी ज़रुरी है - जैसे समाज के रीति-रिवाज़, प्रकृति की गूढ़ बातें, मनुष्य का चिंतनभाव आदि। एक संपूर्ण, सुशील, समग्र व्यक्तित्व के लिए कलाओं का माध्यम आवश्यक है। मुझे अनुभव है कि कुछ शिक्षक/शिक्षिकाएँ कलाओं का भलीभाँति उपयोग करते हैं। आइए उसी अनुभव को जानें और समझे कि किस तरह कला-शिक्षा का माध्यम सजीव एवं रुचिकर होता है।

सूखा मिट्टी का मैदान जिसमें रह-रहकर धूल उड़ रही है। कहीं-कहीं उसमें छोटे-छोटे खण्डों पर घास भी उगी हुई है। विद्यालय की चारदिवारी के आस-पास पेड़ों की कतार है। पेड़ बहुत अधिक नहीं हैं लेकिन थोड़े बहुत हैं। कुछ छोटे, कुछ बड़े और कुछ काफ़ी पुराने हैं। इन्हीं पेड़ों की कतार के एक पेड़ के नीचे पीयूषा जी, जो इस प्राथमिक स्कूल में अध्यापिका हैं बच्चों के साथ एक झुंड में खड़ी हैं। चुलबुले, छोटे-छोटे बच्चे पीयूषा जी से बहुत सारी बातें कह रहे हैं और कभी-कभी सुन भी रहे हैं। इनके चेहरों की मुस्कान और भोलापन पीयूषा जी के लिए जीवनदायिनी जड़ीबूटी है। उनकी शैतानियाँ, उल्टी-पुलटी मज़ेदार बातों से उनकी ज़िंदगी हरी-भरी महसूस होती है।

थोड़ी ही दूरी पर स्कूल का माली बुंदू जो हाथ में बड़ी नली लेकर पेड़-पौधों, क्यारियों, झाड़ियों और ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर पानी डाल रहा है। बसंत चारों ओर अपनी छटा दिखा रहा है। लाल, पीले, गुलाबी, जामुनी रंग चारों ओर बिखरे हुए हैं। छोटी-छोटी क्यारियों में मौसमी बहार दिख रही है। तभी, पास ही पेड़ पर बैठी कोयल कूक उठती है। कूक की गूँज चारों ओर मुखरित होती है। तीन-चार बार कूक गूँजते ही बच्चे भी उस ओर आकृष्ट होते हैं। इस मधुर आवाज़ को सुनकर बच्चे उल्लास से कोयल की कूक की नकल करने लगते हैं। कोयल और बच्चों के बीच कुछ समय तक युगलबंदी चलती है। ऐसे मदहोश माहौल में सभी तरह-तरह से खुशी की अभिव्यक्ति करते हैं। तब पीयूषा जी सभी बच्चों को चुप होने को कहती हैं। थोड़ा शोर करने के बाद सभी बच्चे धीरे-धीरे चुप हो जाते हैं। तभी एक गीत की कुछ पंक्तियाँ उन्हें याद आती हैं जो बचपन में उनके विद्यालय में संगीत की शिक्षिका ने सिखाई थीं। तब तो ज़बरदस्ती सिखाया गया था लेकिन आज वही गीत इन बच्चों को सिखाने को जी कर रहा है। "स्मृति सदा ही सुखद होती है।" बच्चों को पेड़ के नीचे बिठाकर पीयूषा जी ने गीत गुनगुनाना शुरु किया-

"कूके लगी कोयल।
कदंबन पे बैठी फेरी।।
पवन चलन लागे फेरि।
झूम-झूम सरसै लगे।।

कूकै लगी कोयल।
देखी कै संजोगी यही।
हरी भई भूमि सारी।
जन हिय हरसै लगे।।
पवन चलन लागी फेरि।
झूम-झूम सरसै लगे।
कूकै लगी कोयल।।

धीमे स्वर में गुनगुनाहट से शुरु हुआ गीत कब उनके होठों से थोड़े ऊँचे स्वर में निकलने लगा कि उन्हें स्वयं भी पता नहीं चला। गीत समाप्त होते होते बच्चे एकदम उत्साह से भर उठे और लय के साथ ताली बजाने लगे। पीयूषा जी ने भी खुश होकर एक-एक पंक्ति दोहराकर उनकों गीत सिखाना शुरु किया। कुछ बच्चे खड़े होकर झूमने लगे, गाने लगे, कुछ ताल के साथ धीरे-धीरे नाचने लगे। पास खड़ा माली भी यह दृश्य देखकर बहुत खुश हो रहा था और वह मन ही मन गुनगुना रहा था। कुछ ही देर में बच्चों को यह गीत याद हो गया। तत्पश्चात् पीयूषा जी ने, गीत का अर्थ समझाया और बसंत ऋतु में कोयल की मधुर आवाज़ के बारे में बताया कि कोयल केवल बसंत ऋतु में ही नहीं सावन में भी कूकती है। इन सब बातों को बताते हुए पीयूषा जी को आज बहुत खुशी हो रही थी। उन्हें बहुत अच्छी तरह गाना नहीं आता था लेकिन थोड़ा लयबद्ध होकर इन बच्चों को जैसे ही उन्होंने गाना सिखाया तो सारा माहौल हर्षोल्लास से भर गया।

झूमते, गाते बच्चों में से एक बच्चे ने बताया कि जब वह पहली कक्षा में पढ़ता था तो 'झूला' नाम से एक कविता सीखी थी। उसकी माँ ने 'झूला' कविता को सुर में ढाला था। उत्तरप्रदेश की उप शास्त्रीय संगीत में झूला भी एक शैली है। उसी शैली में 'झूला' कविता के शब्द जब डाले गए तो अत्यंत श्रुतिमधुर गीत बना था। पीयूषा जी के आग्रह से और साथियों द्वारा आग्रह करने पर उस बच्चे ने 'झूला' गीत सुनाया। पीयूषा जी को अहसास हुआ जिस तरह झूला आगे-पीछे झूमता है उस गाने की लय में भी वही विशिष्टता थी। तभी गीत की शैली 'झूला' नाम से प्रचार में आई। पीयूषा जी को और एक बात महसूस हुई कि "बच्चों के साथ बैठना, बातें करना और हँसी मज़ाक करना भी काफ़ी ज्ञानवर्धक हो सकता है।

आज पीयूषा जी को हर अंदाज़ में अलग ही आनंद आ रहा है। उनके प्रिय लेखकों में से जयशंकर प्रसाद एक हैं। उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ एकदम से याद आई तो वह वाणी में नियमित आरोह-अवरोहन से बोलने लगीं-

"नया हृदय है नया समय है, नया कुंज है।
नए कमल-दल बीच नया किंजलक पुंज है।
नया तुम्हारा राग मनोहर श्रुति सुखकारी।
नया कंठ कमनीय वाणी वीणा अनुकारी।।

पीयूषा जी की स्वत: प्रवर्तित इस अभिव्यक्ति से बच्चे खड़े होकर ताली बजाने लगे। और कहने लगे-यह भी हमें सिखा दीजिए। तभी घंटी बज उठी और कक्षा में वापस जाने का समय हो गया। नाचते झूमते बच्चे चलने लगे लेकिन पीयूषा जी भागकर सबसे आगे खड़ी हो गई और हँसकर बोली "लाइन".....

इस प्रकार हम देखते हैं किस तरह से एक अध्यापिका, अपनी सूझबूझ और कल्पनाशक्ति से इन बच्चों को शिक्षा देती है। शिक्षा का माध्यम कला के द्वारा कितना सहज, स्फूर्ति तथा उल्लासपूर्ण, ज्ञानवर्धक और रोचक हो जाता है। हम सबने अपने जीवन में कितने ही गीत सीखे हैं, रंगमंच पर नाटक प्रस्तुत किए हैं। आइए, उन सब क्षणों को याद करें और उन सभी अनुभवों को अपनी कक्षा में अपने बच्चों को भी दें।

अक्सर सुनने में आता है बच्चे स्कूल नहीं जाना चाहते या थोड़ा बहुत पढ़-लिखकर पढ़ाई छोड़ देते हैं। कला के द्वारा हम पाठ्यक्रम को इस तरह सजाएँ कि बच्चों का स्कूल के प्रति झुकाव बढ़े। स्कूल में बच्चों को बनाए रखने के लिए सिर्फ़ ज्ञान की बड़ी बातें न बताएँ। उन्हें हँसी-खुशी, रुचिकर-सहज बातें इस तरह बताएँ कि वह उन बातों को समझ पाएँ और अधिक जानकारी के लिए आग्रही हो उठें।

कलाओं के विभिन्न पहलू जैसे - चित्राकंन, संगीत, नृत्य, नाटक के द्वारा हम प्राथमिक स्तर के बच्चों को बहुत कुछ सिखा सकते हैं। बहुत-सी गूढ़ बातें बच्चों को खेल-खेल में समझाई जा सकती हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2005 के अनुसार दृश्य और प्रदर्शन दोनों ही कलाओं को पाठयचर्या में शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाए जाने की ज़रूरत है। "..... कला के अंतर्गत, संगीत, नृत्य, दृश्य-कला और नाटक इन सभी को शामिल किया जाना चाहिए।..... बच्चों में भाषा, प्रकृति के रूपों की खोज और अन्य की समझ आदि को कला के माध्यम से आसानी से विकसित कर सकते हैं, कला की प्रकृति ही ऐसी होती है कि सभी बच्चे उसमें भागीदारी कर सकते हैं।....."

स्कूल के सभी स्तरों में और विविध विषयों में कला के विविध माध्यम और स्वरूप बच्चों को खेल-खेल मे विकसित होने में मदद करते हैं। उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। और भी एक बात बहुत गहन है जिस पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2005 की समीक्षा प्रक्रिया में विभिन्न स्तरों में कला-शिक्षा के विभिन्न आयामों पर कलाओं के राष्ट्रीय फ़ोकस समूह ने विचार किया -

"हमारी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को उसकी विविधताओं और समृद्धि के साथ बचाए रखने के लिए एवं उसे पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने तथा उसके समुचित विकास की दृष्टि से कला का अपना अमूल्य योगदान है।"

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षिक नीति 1968, 1986, 1992 में बनाई एवं सभी नीतियों में शिक्षा एवं कलाओं को महत्त्व दिया है। सरकार की सर्व शिक्षा अभियान नीति जिसका मूलमंत्र है "सब पढ़ें सब बढ़ें" में शिक्षा को सहज एवं रुचिकर बनाने पर ध्यान देना आवश्यक समझा गया। इस संबंध में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2005 में कलाओं की भूमिका एवं स्थिति पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई है। जिन्हें लगभग एक सदी पहले 'पाठ्यक्रम-सहगामी' क्षेत्र की परिधि में डाल दिया गया था। बढ़ते बच्चों की रचनात्मकता का प्रमुख भाग है 'सौंदर्यबोध एवं अनुभव'। इसलिए

हमें कलाओं को बाकायदा पाठ्यचर्या के क्षेत्र में लाना होगा-उन्हें अधिगम के सभी क्षेत्रों में समाहित कर विभिन्न अवस्थाओं में प्रासंगिक कलाओं को उनकी पहचान देनी होगी। विचारधाराओं को लिपिबद्ध कर हम सफ़लता नहीं पा सकते। सरकार ने अनेक नीतियाँ एवं योजनाएँ भी बताई हैं जैसे शिक्षा का अधिकार (Right to Education Act) जो कि 1 अप्रैल 2010 को लागू हुआ है, के तहत 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को कला द्वारा शिक्षा एवं कला की शिक्षा से प्राप्त अनेक लाभों का विवरण दिया गया है लेकिन ऐसी योजनाओं को व्यवहारिक कौन बनाएगा - अध्यापक - अध्यापिकाएँ। इन योजनाओं को सरकार लिपिबद्ध कर सकती हैं। लेकिन अध्यापक-अध्यापिकाएँ इसमें सबसे सशक्त कड़ी हैं। जो कुछ कार्यान्वित होना है वह पीयूषा जी जैसे प्रत्येक शिक्षक/शिक्षिका ही कर सकते हैं। थोड़ी-सी सूझबूझ, सृजनात्मक चिंतन और बच्चों से प्यार, सारे माहौल में तबदीली ला सकता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक/शिक्षिकाएँ अपने स्वयं के ज्ञान, आसपास रहने वाले कलाकारों की भागीदारी और पाठ्यक्रम में अर्न्तविषय के समागम से बच्चों को श्रेष्ठतम शिक्षा दे सकते हैं।

पी.जे. हिल्स के अनुसार - "शिक्षा का संचार एक पारस्परिक क्रिया है जिसमें दोनों पक्ष अपने समाज की निपुणता, मानक और आदर्श की व्याख्या करते हैं।"

कविगुरु रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है - "भावरस को समझने के लिए हमारा हृदय सदा व्याकुल रहता है। हम कविता, संगीत, शिल्पकला, कहानी आदि से बहुत-सी विधियाँ अपना सकते हैं और भाव एवं रसों का संभोग करने के आयोजन में जुट सकते हैं।

❑❑❑